P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-III* November-2015

निर्गुण संत काव्यधारा में गुरू का महत्त्व

पिन्टू रावल
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा

सारांश

निर्गुण संत काव्यधारा में संतो ने अपनी वाणी में गुरू को विशेष महत्त्व दिया है। ये सभी कवि गुरू को ईश्वर से भी ऊँचा मानते है। इन कवियों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि गुरू कृपा से ही ईश्वर की प्राप्ति होतो है।

गुरू का अर्थ है, अंधकार (गु) से निकालकर प्रकाश (रू) की ओर ले जाने वाला। मानव को गुरू कृपा के बिना वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति नही होती। कबीरदास ने तो सद्गुरू को ब्रह्म से भी बड़ा माना है और गोबिन्द से पहले गुरू को नमन किया है। वे कहते हैः–

गुरू गोबिन्द दोऊ खड़े काकै लागू पाँय।
बलिहारी गुरू आपनौ जिन गोबिन्द दियो मिलाय।।

रज्जबदास स्पष्ट शब्दों में गुरू की महिमा का गान करते हुए कहते हैः–

जन्म सफल तब का भया, चरनौ चित्त लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुरू पाया।।

इस प्रकार निर्गुण संतकाव्यधारा के संतो ने गुरू की महिमा का गान किया है।

मुख्य शब्द : गुरू, शिष्य, निर्गुण, संत, ज्ञान, कृपा, महत्त्व।

प्रस्तावना

भगवत्कृपा से ही साधक को सतगुरू मिलता है और बिना सतगुरू के प्रभु की प्राप्ति असंभव है इसलिए निर्गुण संत काव्यधारा में गुरू का महत्त्व लोक कल्याण के लिए जरूरी माना है। शब्दकोश में गुरू का अर्थ दिया है– ''विद्या या कला सिखाने वाला''[1]

जो हमें विद्या का ज्ञान प्रदान करता है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताता है वह गुरू कहलाता है।

निर्गुण संत काव्यधारा की रचना ऐसे समय में हुई जब भारतीय समाज छुआ–छूत की कठोरता और धर्मगत रूढ़िवादी परम्परा से टूटने की कगार पर था। ऐसी परिस्थिति में कबीर, रज्जब, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, चरणदास, दयाबाई, सहजोबाई, पलटू साहिब आदि संतो ने अपनी वाणी से बिखरते समाज को रूढ़िवादी परम्परा से मुक्त कर भक्ति मार्ग द्वारा भारतीय जन–जन में एकता और शान्ति का प्रचार किया। प्राचीन भारतीय गुरूकुलों की परम्परा रही है कि शिष्यों को भौतिक सुखां का त्याग कर आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए गुरू के प्रति आस्था भाव अनिवार्य है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि ''नाथपंथियों योगियों, सहज और बज्रयानियों, तान्त्रिकों और परवर्ती संतो में इसलिए सदगुरू की महिमा फैल गई है। सदगुरू के बिना जगत के चाहे और सभी व्यापार हो जाए लेकिन यह जटिल साधना पद्धति नहीं हो सकती।''[2] भारत में आचार्य, गुरू, राष्ट्र निर्माता, अध्यापक आदि शब्दों को प्रयोग देखने को मिलता है, लेकिन 'गुरू' शब्द का सर्वाधिक प्रयोग होता है। ''गुरू उघमने। गुरूते सत्यथे प्रवर्तयति शिष्यम् इति।''[3] शिष्य को सत्य पथ पर प्रवृत एवं परिचालित करता है, वह गुरू कहा जाता।

अब हम संतो की वाणी के द्वारा गुरू के महत्त्व पर प्रकाश डालते है

संत कबीरदास

निर्गुण संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास के मत में गुरू का महत्त्व सर्वोपरि है, उनके अनुसार गुरू के बिना जीव का भला नहीं हो सकता–

''गुरूदेव बिन जीव की कल्पना न मिटै,
गुरूदेव बिन जीव का भला नहीं।
गुरूदेव बिन जीव का तिमरै नासै नहीं,
समझि बिचारी ले मनै माहीं।।
राह बारीक गुरूदेव तें पाईये,
जन्म अनेक की अटक खोलै।
कहे कबीर गुरूदेव पूरन मिलै,
जीव और सीव तब एक तोंलैं।।''[4]

जीव सांसारिक कल्पना छोड़कर मोक्ष की कल्पना करता है, तो बिना गुरू के कल्पना नहीं मिटेगी, न ही बिन गुरू के अंधेरा मिटेगा। कबीर जी कहते हैं कि जब जीव और शिव में, आत्मा और परमात्मा में कोई अंतर नहीं रहेगा, तभी साधक को पूर्ण गुरू मिलना संभव है। कबीरदास जी कहते हैः– ''उस परमात्मा के द्वार पर जीव गुरू की कृपा और साधु की संगत से पहुँच सकता हैः–

ए मरजीवा अमृत पीवा, का धसि मरसि पतार।
गुरू की दया साधु की संगति, निकरि आव यही द्वार।।''[5]

वे गुरू की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं।

सतगुरू की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़ियाँ, अनँत दिखावणहार।।

सद्गुरू की महिमा, उनका गौरव असीम है, अपरम्पार है। गुरू ने मुझ पर असंख्य उपकार किए हैं। उन्होंने मेरे अगणित ज्ञान–चक्षुओं को खोल दिया हैं।

ग्यान प्रकास्या गुरू मिल्या, सो जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आइ।।

गरू की प्राप्ति से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है। हमें गुरू को भुलना नहीं चाहिए और जब भगवान् ने हम पर अनुकम्पा की है, तब हमें गुरू की प्राप्ति हुई है, गुरू से मिलन हुआ है।

इस प्रकार निर्गुण संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में कबीर ने हृदय से गुरू की महत्ता का वर्णन किया है।

संत सुन्दरदास

सांसारिक क्लेश को दूर करने के लिए गुरू कृपा को आवश्यक मानते हुए कहते है–

''गुरू के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को ग्रहै
गुरू के प्रसाद भव दुःख विसराइये।
गुरू के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै
गुरू के प्रसाद राम नाम गुन गाइये।।
गुरू के प्रसाद सब योग की युगति जानैं
गुरू के प्रसाद शून्य में समाधि लाइये।
सुन्दर कहत गुरूदेव जो कृपाल हौंहि
तिन के प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाईये।''[6]

गुरू की कृपा से उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है, गुरू कृपा से सांसारिक क्लेश दूर हो जाते है, गुरू की कृपा से प्रभु के प्रति समपर्ण, आध्यात्म भाव और भक्ति रूपी शक्ति आती है, योग साधना करने की युक्ति भी गुरू कृपा से संभव है। गुरू की कृपा से शून्य में समाधि होकर तत्व ज्ञान प्राप्त होता है।

संत दादूदयाल ने भी अपनी वाणी से गुरू की महत्ता को सिद्ध किया है, गुरू ही मिथ्या आडम्बरों में वशीभूत मानव को सही राह प्रदान करता है। जिसके परिणाम स्वरूप गुरू के ज्ञान से मनुष्य की आत्मा विकारों से मुक्त होकर निर्मल हो जाती है।

संत रविदास

स्वामी रामानंद के शिष्य संत रविदास का मानना है कि साधक को प्रभु के चरणों में स्मरण के लिए ज्ञान आवश्यक है और ज्ञान प्राप्ति केवल गुरू कृपा से ही संभव है–

''बपुरौ सति रैदास कहै रे
ज्ञान बिचारि नाइ चित राषै हरि के सरनि रहै रे।
पाती तोड़ै पूजा रचावै, तारणतिरण कहै रे।
मूरति मांहि बसै परमेस्वर, तौ पानी मांही तिरै रे।
त्रिविध संसार कवन बिधि तिरबौ, जे दिठ नाव गहै र।
नाव छाड़ि जे मूड़े बैठे, तो दूणा दूष कहै रे।
गुरू को सबद रू सुरति कुदाली, षोजत कोई लहै रे।
राम काहू के बांटि न आयौ, सोनैं कूल बहे रे।
झूठी माया जग डहकाया, तो तनि ताप दहै रे।
कहै रेदास राम जपि रसना, माया काहू कै संगि न रहै रे।।''[7]

गुरू कृपा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए संत रविदास प्रभु से प्रार्थना करते है–

''साध संगति बिना भाव नहीं
उपजै भाव बिन भगति क्यू होय तेरी
बंदत रैदास रघुनाथ सुनि बीनती
गुर परसादि कृपा करो मेरी।''[8]

साधु संगति के बिना भक्ति भाव उत्पन्न नहीं होता। बिना भाव के भक्ति नहीं होती। इसलिए रविदास कहते हैं। हे रघुनाथ मेरी प्रार्थना सुनो। गुरूदेव कृपा प्रसाद दे। इस प्रकार रैदास ने अपनी वाणी से गुरू के महत्त्व को आम लोगों तक पहँचाते है।

गुरू नानक देव

जी कहते है इस संसार में गुरू ही साधक को परमात्मा के दर्शन करा सकता है। गुरू नानक देव के गुरू की महिमा के आधार पर सिक्ख धर्म में ईश्वर के दर्शन के लिए गुरू के महत्त्व को आवश्यक मानते है।

संत चरणदास

राजस्थान की भूमि पर जन्में संत चरणदास का 'गुरू भक्ति प्रकाश' सबसे प्रामाणिक ग्रंथ है। चरणदास ने स्वयं व्यास पुत्र शुकदेव को गुरू के रूप में माना और चरणदासी संप्रदाय नामक पंथ की स्थापना की। संत चरणदास भगवद्गीता के निष्काम भाव से प्रभावित थे, वे कहते है–

''कहे गुरू शुकदेव, चरणदास गुलाम।
ऐसी साधना धारिए, रहिए निष्काम।''[9]

इस संप्रदाय में एक की उपेक्षा कर दूसरे की इबादत करना मूढता है। संत चरणदास की शिष्याओं में सहजाबाई प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थीं और संत मत के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति की थी उनकी गुरूभक्ति का प्रमाण उनकी कोमल और माधुर्य वाणी से जानी जा सकती है–

''कर जोरूं परनाम करि, धरूं चरन पर सीस।
दादा गुरू सुकदेव जी, पूरन बिस्वा बीस।
परम हंस तारन तरन, गुरू देवन गुरू देव।
अनुभै बानी दीजीए, सहजो पावौ भेव।।''[10]

सहजोबाई ने गुरू को चार श्रेणियों में विभाजित किया है, गुरू पारसमणि के समान है जो शिष्य की भावना रूपी लोहे को कंचन बना देता है। मलयगिरि के समान शिष्य को चंदन के समान सुगंधित कर देता है। गुरू अपनी ज्योति से शिष्य के हृदय में ज्योत्सना की तरह आलोकित करता है। सच्चा गुरू अपने शिष्य की लघुता पर कृपा करके अपने ही समान बना लेता है।

संत चरणदास की दूसरी शिष्या दयाबाई भी गुरू में ब्रह्म स्वरूप अनुभव करती है। अपनी रचनाओं में संत चरणदास का नाम श्रद्धा से गुरू के रूप में लेती है गुरू

के बिना, प्रभु भक्ति, ध्यान, अशुभ कार्या का त्याग नही कर सकते।

दयाबाई कहती है–

''गुरू बिन ज्ञान ध्यान नहिं हौवै।
गुरू बिन चौरासी मग जोबै।
गुरू बिन राम भक्ति नहिं जागै।
गुरू बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै।
गुरू ही दीन–दयाल गोसाई।
गुरू सरने जो कोई जाई।
पलटै करैं काग सूं हंसा।''[11]

संत पलटू साहिब

निर्गुण संत काव्यधारा के प्रमुख संत पलटू साहिब कहते हैं कि सद्गुरू काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार रूपी विकारों को निकाल कर ज्ञान रूपी चाबुक देता है। एक समर्थ सद्गुरू ही साधक को विकारों से मुक्त करता है।

वे कहते है–

''सद्गुरू के परताप से पकरा पांचो चोर।
पकरा पांचो चोर नगर में अदल चलाया।
तिर्गुन दिया निकारि आनि कै भक्ति बसाया।
लोभ मोह को पकरि ताहि की गदरन मारी।
तृस्ना औ हंकार पेट दियो इनको फारी।
दुर्मति दई निकारि सुमति का चाबुक दीन्हा।
चढ़े सिपाही संत अमल कायागढ़ कीन्हा।
पलटू संजम मै किया पर मुलुक में सोर।
सतगुरू के परताप से पकरा पांचो चोर।''[12]

इस प्रकार पलटू साहिब का गुरू की महिमा का बखान अविस्मरणीय है। गुरू ही जीव को भवसागर पार कराने वाला है।

संत पीपा

संत कबीर और रैदास के गुरू भाई संत पीपा जी बाह्य आडंबरों और रूढ़ियों के घोर विरोधी थे। संत पीपा जी के अनुसार सच्चे साधक की निर्मल अर्न्तदृष्टि की उसकी सम्पत्ति है और सच्चे गुरू की कृपा से ही यह पूँजी सम्भव है।

अपने गुरू के सम्बन्ध में पीपा जी कहते है–

''पीपा के पंजरि बस्यो, रामानन्द को रूप।
सबै अंधेरा मिटि गया, देख्या रतन अनूप।
लोह पलट कंचन करयौ, सतगुरू रामानन्द।
पीपा पद रज है सदा, मिट्यो जगत को फंदा।''[13]

संत पीपा जी ने अपने गुरू के आदेश पर पश्चिमी भारत में पैदल यात्रा कर रामानन्दी वैष्णवी भक्ति का प्रचार कर गरू के प्रति श्रद्धा का परिचय दिया।

संत रज्जबदास

दादू पंथ के संत रज्जबदास विवेकवान, प्रतिभा के संत थे। ये दादूदयाल के शिष्य थे। संत रज्जब गुरू के बड़े भक्त थे जिसका उदाहरण इस प्रकार है–

''दादू दीन दयाल गुरू, सो मेरे सिरमौर है
जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठोर।
रज्जब कूं अज्जब मिल्या, गुरू दादू दातार।
दुःख दरिद्र तब का गया, सुखसंपत्ति अपार।
रज्जब नर–नारी सकल, चकवा चकवी जोड़।
गुरू बैन बिच रैन में, किया दूहूँ घर फोड़।
गुरू दीरध गोबिंद सूं, सारै शिष्य सुकाज।
रज्जब मक्का बडा परि, पंहुचै बेठि जहाज।
कामधेनु गुरू क्या है, जो सिष निःकामी होइ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मंदभागी सिष जोइ।''[14]

जिन्होंने अपना मौर उतार कर गुरू के चरणों में रख कर दादूदयाल को अपना सिरमौर बना दिया, जिस गुरू की कृपा से शिष्य को दल रहित स्थान प्राप्त हुआ। रज्जब को दादू जैसा आलौकिक गुरू मिला जिस स दरिद्र रूपी दुःख दूर होकर सुख की संपत्ति मिली। संसार की सारी व्यवस्था स्त्री और पुरूष में बटी है, लेकिन इस मिलन से क्षण भर सुख मिलता है। इस प्रकार सुख–दुख रूपी द्वन्द्व सदैव चलता रहता है। गुरू की कृपा से सारे द्वंद्व टूट गये हैं। गुरू तो गोबिन्द से बड़े है, गुरू से जुड़ते ही साधक परमात्मा से जुड जाता है। रज्जबदास जी कहते हैं कि गुण रूपी नाव में बैठते ही शिष्य मक्का पहुंच गए। शिष्य तो निकम्मे थे। ऐसी परिस्थिति में कामधेनु रूपी गुरू क्या कहै। गुरू तो कामधेनु है, लेकिन शिष्य निंद्रा में पड़ा रहता है। रज्जबदास जी कहते हैं कि अगर कोई रोता हुआ गुरू के पास जाए तो वह अभागा है। साधक द्वारा गुरू के चरणों में अंहकार रूपी चढ़ावा ही शिष्यत्व का लक्षण है।

निष्कर्ष

अतः इस प्रकार निर्गुण संत काव्यधारा में गुरू की महीमा पर बल दिया गया है।

संदर्भ सूची

1. प्रामाणिक हिन्दी कोश–स0 आचार्य रामचन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संशोधित संस्करण–1996 पुर्नमुद्रण 1997, पृ0 स0 224।
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 स0 65।
3. कल्याण शिक्षांक–श्री जगन्नाथ जी वेदालंकार, शिक्षा एवं गुरू शब्द की निरूक्ति वर्ष 62, संख्या 2, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ0 स0 263।
4. कबीर समग्र भाग 2–डॉ0 युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1997, पृ0 स0 1604, 1605।
5. हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्याकंन–सं डॉ0 यश गुलाटी, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण 1969, पृ0 स0 60।
6. सुन्दरग्रंथावाली भाग–2, गुरूदेव को अंग– डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र, किताबघर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ0 स0 694।
7. रैदास समग्र– डॉ0 युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, पिशाचमोचन, वाराणासी, द्वितीय संस्करण 2009, पृ0 स0 86, 87।
8. वही, पृ0 स0 93।
9. सूफी और संत काव्य में गुरू संबन्धी परिकल्पना–डॉ0 अशोक कुमार, शांति प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण 2005, पृ0 स0 78।
10. सहजोबाई की बानी–सहज प्रकाश, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, संस्करण 2005, पृ0 स0 4।
11. दयाबाई की बानी– दयाबोध और विनय मालिका, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, संस्करण 2005 पृ0 स0 4।
12. पलटू साहिब की बानी भाग–1, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, संस्करण 2008, पृ0 स0 107।
13. मीरायन पत्रिका, वर्ष 3, जून–अगस्त सन् 2009, मीरा स्मृति संस्थान, चितौड़गढ़, पृ0 स0 48।
14. समाधि की सुराही– ओशो, रजनीश, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ0 स0 76।